Chapter अठारह

पृथु महाराज द्वारा पृथ्वी का दोहन

मैत्रेय उवाच
इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ।
पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने आगे कहा; इत्थम्—इस प्रकार; पृथुम्—राजा पृथु को; अभिष्टूय—स्तुति करने के बाद; रुषा—क्रोध से; प्रस्फुरित—काँपते हुए; अधरम्—उसके होंठ; पुनः—फिर; आह—उसने कहा; अवनिः—पृथ्वीलोक; भीता—डरी हुई; संस्तभ्य—स्थिर होकर; आत्मानम्—मन को; आत्मना—बुद्धि से।

मैत्रेय ने विदुर को सम्बोधित करते हुए आगे कहा : हे विदुर, जब पृथ्वी ने स्तुति पूरी करती तब भी राजा पृथु शान्त नहीं हुए थे, उनके होंठ क्रोध से काँप रहे थे। यद्यपि पृथ्वी डरी हुई थी, किन्तु उसने धैर्य धारण करके राजा को आश्वस्त करने के लिए इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया।

सन्नियच्छाभिभो मन्युं निबोध श्रावितं च मे ।
सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सन्नियच्छ—कृपया शान्त करें; अभिभो—हे राजा; मन्युम्—क्रोध; निबोध—समझने का प्रयास करें; श्रावितम्—जो कुछ कहा गया है; च—भी; मे—मेरे; सर्वतः—सभी जगह से; सारम्—सार; आदत्ते—ग्रहण करता है; यथा—जिस प्रकार; मधु-करः—भौंरा; बुधः—बुद्धिमान पुरुष।

हे भगवन्, आप अपने क्रोध को पूर्णतः शान्त करें और जो कुछ मैं निवेदन कर रही हूँ, उसे धैर्यपूर्वक सुनें। कृपया इस ओर ध्यान दें। मैं भले ही दीन हूँ, किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति सभी स्थानों से ज्ञान के सार को ग्रहण करता है, जिस प्रकार भौंरा प्रत्येक फूल से मधु संचित करता है।

अस्मिंल्लोकेऽथवामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयःप्रसिद्धये ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अस्मिन्—इस; लोके—जीवनकाल में; अथ वा—या; अमुष्मिन्—अगले जन्म में; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; तत्त्व—सत्य; दर्शिभिः—दर्शन कर चुकने वालों के द्वारा; दृष्टाः—संस्तुत; योगाः—विधियाँ; प्रयुक्ताः—काम में लाई गईं; च—भी; पुंसाम्—मनुष्यों के; श्रेयः—लाभ; प्रसिद्धये—प्राप्त करने में।

मानव समाज को इस जीवन में ही नहीं वरन् अगले जन्म में भी लाभ पहुँचाने के लिए बड़े-बड़े ऋषियों तथा मुनियों ने जनता की सम्पन्नता के अनुकूल विभिन्न विधियों की संस्तुति की है।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता में वेदों में प्रस्तुत तथा मुनियों और ब्राह्मणों द्वारा प्रस्तुत पूर्ण ज्ञान का उपयोग मानव समाज के लाभ के लिए किया जाता है। वैदिक आदेश श्रुति कहलाते हैं और ऋषियों ने इन सिद्धान्तों के विषय में जो अतिरिक्त ज्ञान प्रस्तुत किया है, वह स्मृति कहलाता है। ये वैदिक आदेशों का अनुसरण करते हैं। मानव-समाज को *श्रुति* तथा *स्मृति* दोनों के ही आदेशों का लाभ उठाना चाहिए । जो भी आध्यात्मिक जीवन में उन्नति करना चाहता है उसे इन आदेशों को ग्रहण करके नियमों का पालन करना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृत सिंधु* में कहा है कि यदि कोई अपने को आध्यात्मिक जीवन में उन्नत मानता है, किन्तु श्रुतियों तथा स्मृतियों के संदर्भ ग्रहण नहीं करता तो वह समाज के लिए परेशानी पैदा करना है। मनुष्य को चाहिए कि श्रुतियों तथा स्मृतियों का पालन न केवल आध्यात्मिक जीवन में, वरन् भौतिक जीवन में भी करे। जहाँ तक मानव समाज का सम्बध है, मानव-जाति के जनक मनु द्वारा दिये गये नियमों का भी, जिसे *मनुस्मृति* कहते हैं, पालन किया जाना चाहिए।

मनुस्मृति में कहा गया है कि स्त्री को स्वतंत्रता नहीं प्रदान करनी चाहिए, वरन् उसे पिता, पति तथा प्रौढ़ पुत्र का संरक्षण मिलना चाहिए। प्रत्येक दशा में स्त्री को किसी संरक्षक के आश्रित रहना चाहिए। आजकल स्त्रियों को पुरुषों की भाँति पूरी स्वतंत्रता मिली हुई है, किन्तु हम देखते हैं कि ऐसी स्वतंत्र स्त्रियाँ संरक्षकों की देखरेख में रहनेवाली स्त्रियों की अपेक्षा अधिक सुखी नहीं हैं। यदि लोग ऋषियों, श्रुतियों तथा स्मृतियों के आदेशों का पालन करें तो वे इस जीवन में और अगले जीवन में भी सुखपूर्वक रह सकते हैं। दुर्भाग्यवश धूर्त लोग सुखी रहने के लिए जीवन के अनेक साधन पैदा कर रहे हैं। हर व्यक्ति तरह-तरह के साधन ढूँढ रहा है। इस प्रकार मानव-समाज भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन का कोई आदर्श नहीं रह गया है, जिससे लोग भरमाये हुए हैं और संसार में न तो शान्ति है न सुख। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानव समाज की समस्याओं को हल करने के प्रयास हो रहे हैं, किन्तु वे अभी भी दिग्भ्रमित हैं। वेदों के मुक्त आदेशों का पालन न करने से वे दुखी हैं।

इस श्लोक में दो महत्त्वपूर्ण शब्द आये हैं—*अस्मिन्* तथा *अमुष्मिन्*। *अस्मिन्* का अर्थ है, ''इस जीवन में'' और *अमुष्मिन्* का अर्थ है, ''अगले जीवन में।'' दुर्भाग्यवश इस युग में बड़े-बड़े प्रोफेसरों तथा विद्वानों का भी विश्वास है कि अगला जीवन होता ही नहीं; सब कुछ इसी जीवन में समाप्त हो

जाता है। चूँकि ये सब धूर्त तथा मूर्ख हैं, अत: ये कौन सा उपदेश दे सकते हैं? फिर भी ये अपने को विद्वान् तथा प्रोफेसर मानते हैं। इस श्लोक में *अमुष्मिन्* शब्द अत्यन्त सुस्पष्ट है। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने जीवन को इस प्रकार ढाले कि उसका अगला जीवन लाभप्रद हो। जिस प्रकार बच्चों को इसलिए शिक्षित किया जाता कि बाद में वे सुखी रहें उसी प्रकार मनुष्य को इस जीवन में शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जिससे मृत्यु के पश्चात् शाश्वत तथा सम्पन्न जीवन प्राप्त किया जा सके। इसलिए आवश्यक है कि जो कुछ श्रुतियों तथा स्मृतियों में दिया हुआ है, लोग उसका पालन करें जिससे जीवन-उद्देश्य सफल हो।

तानातिष्ठति य: सम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् ।
अवर: श्रद्धयोपेत उपेयान्विन्दतेऽञ्जसा ॥ ४॥

शब्दार्थ

तान्—उन; आतिष्ठति—पालन करता है; य:—जो कोई; सम्यक्—पूर्णत:; उपायान्—नियम; पूर्व—प्राचीनकाल में; दर्शितान्—आदेशित; अवर:—अनुभव-हीन; श्रद्धया—श्रद्धा से; उपेत:—स्थित; उपेयान्—कर्मफल; विन्दते—सुख भोगता है; अञ्जसा—सरलता से।

जो कोई प्राचीन ऋषियों द्वारा बताये गये नियमों तथा आदेशों का पालन करता है, वह व्यावहारिक कार्यों में उनका उपयोग कर सकता है। ऐसा व्यक्ति सरलता से जीवन तथा सुखों का भोग कर सकता है।

तात्पर्य : वैदिक नियम हमें प्रेरित करते हैं कि हम महापुरुषों के पदचिह्नों का अनुसरण करें (*महाजनो येन गत: स पन्था:*)। इस प्रकार हम अपने इस जीवन तथा अगले जीवन में लाभ उठा सकते हैं और अपने भौतिक जीवन को भी सुधार सकते हैं। प्राचीन ऋषियों तथा मुनियों द्वारा स्थापित नियमों का पालन करते हुए हम जीवन का उद्देश्य बड़ी सरलता से समझ सकते हैं। इस श्लोक का *अवर:* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है, ''अनुभवहीन।'' प्रत्येक बद्धजीव अनुभवहीन होता है। प्रत्येक व्यक्ति *अबोधजात* अर्थात् जन्मत: मूर्ख होता है। आजकल सभी प्रजातांत्रिक सरकारों में सभी प्रकार के मूर्ख तथा धूर्त निर्णय करते हैं, लेकिन वे कर क्या सकते हैं? उनके विधान का क्या परिणाम निकलता है? वे आज एक नियम बनाते हैं और कल उसे सबक के मारे निरस्त कर देते हैं। एक राजनीतिक दल देश का उपयोग एक उद्देश्य के लिए करता है, तो अगले क्षण दूसरा दल दूसरे

प्रकार की सरकार बनाकर सभी नियमों तथा विधानों का अन्त कर देता है। यह चर्वितचर्वण विधि (*पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्*) मानव समाज को कभी सुखी नहीं बना सकती। मानव समाज को सुखी तथा सम्पन्न बनाने के लिए हमें मुक्त पुरुषों द्वारा दी गई आदर्श विधियों को स्वीकार करना होगा।

ताननादृत्य योऽविद्वानर्थानारभते स्वयम् ।
तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनकी; अनादृत्य—उपेक्षा करके; यः—जो कोई; अविद्वान्—धूर्त; अर्थान्—योजनाएँ; आरभते—प्रारम्भ करता है; स्वयम्—स्वयं; तस्य—उसके; व्यभिचरन्ति—सफल नहीं होते; अर्थाः—कार्य; आरब्धाः—प्रयत्न किये गये; च—तथा; पुनः पुनः—बार-बार।

ऐसा मूर्ख पुरुष जो कोई मनोकल्पना द्वारा अपने निजी साधन तथा माध्यम तैयार करता है और साधुओं द्वारा स्थापित दोषहीन आदेशों को मान्यता नहीं प्रदान करता, वह अपने प्रयासों में बार-बार असफल होता है।

तात्पर्य : आजकल प्राचीन आचार्यों तथा मुक्त पुरुषों द्वारा दिये गये निर्दोष आदेशों का उल्लंघन करना एक फैशन बन चुका है। आजकल के लोग इतने पतित हो चुके हैं कि उन्हें मुक्तजीव या बद्धजीव में अन्तर प्रतीत नहीं होता। बद्धजीव में चार दोष होते हैं—वह त्रुटि करेगा, वह मोहग्रस्त होगा, वह दूसरों को धोखा दे सकता है तथा उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। अतः हमें मुक्त पुरुषों से आदेश ग्रहण करना होगा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन सीधे भगवान् से उन व्यक्तियों के माध्यम से आदेश प्राप्त करता है, जो इन आदेशों का दृढ़ता से पालन करते रहते हैं। कोई अनुयायी भले ही मुक्त पुरुष न हो, किन्तु यदि वह मुक्त रूप भगवान् का अनुसरण करता है, तो स्वाभाविक रूप से उसके कर्म भौतिक प्रकृति के कल्मषों से मुक्त होते हैं। अतः भगवान् चैतन्य कहते हैं, ''मेरे आदेश से तुम गुरु बन सकते हो।'' भगवान् के दिव्य आदेशों में पूर्ण श्रद्धा रखकर तथा इन आदेशों का पालन करके मनुष्य तुरन्त गुरु बन सकता है। भौतिकतावादी लोग मुक्त पुरुष से आदेश ग्रहण करने में रुचि नहीं रखते, वे तो अपने ही कल्पित विचारों में रुचि रखते हैं, जिसके कारण उन्हें अपने प्रयासों में बार-बार असफल होना पड़ता है। चूँकि अब सारा संसार बद्धजीवों के अपूर्ण आदेशों का अनुसरण कर रहा है, इसलिए मानवता पूर्णतः मोहग्रस्त है।

पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशाम्पते ।
भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

पुरा—प्राचीनकाल में; सृष्टाः—उत्पन्न; हि—निश्चय ही; ओषधयः—जड़ी-बूटियाँ तथा अन्न; ब्रह्मणा—ब्रह्मा द्वारा; याः—वे जो; विशाम्-पते—हे राजा; भुज्यमानाः—भोग किया गया; मया—मेरे द्वारा; दृष्टाः—देखा गया; असद्भिः—अभक्तों द्वारा; अधृत-व्रतैः—समस्त आध्यात्मिक कृत्यों से शून्य।

हे राजन्, प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने जिन बीजों, मूलों, जड़ी-बूटियों तथा अन्नों की सृष्टि की थी वे अब उन अभक्तों द्वारा उपभोग किये जा रहे हैं, जो समस्त आत्म-ज्ञान से शून्य हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा ने इस भौतिक जगत की सृष्टि जीवात्माओं के उपयोग के लिए तो की थी, किन्तु सृष्टि इस व्यवस्था के अनुसार हुई थी कि वे समस्त जीवात्माएँ जो इसमें इन्द्रियतृप्ति के लिए आएँगी उन्हें ब्रह्माजी वेदों की शिक्षा देंगे, जिससे वे भगवान् इस संसार को छोड़कर के धाम को वापस जा सकें। पृथ्वी पर उगनेवाली सभी आवश्यक वस्तुएँ यथा फल, फूल, वृक्ष, अन्न, पशु इत्यादि भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ में प्रयुक्त किये जाने के निमित्त उत्पन्न की गई थीं। किन्तु गोरूप पृथ्वी निवेदन कर रही है कि ये समस्त सुविधाएँ ऐसे अभक्तों द्वारा उपयोग में लाई जा रही हैं, जिनके पास आत्मज्ञान के लिए कोई योजना नहीं है। यद्यपि पृथ्वी में अन्न, फल तथा फूल उत्पन्न करने की अपार क्षमता है, किन्तु जब अभक्तों द्वारा जिनका के कोई आध्यात्मिक उद्देश्य नहीं है। इनका उपभोग होने लगता है, तो पृथ्वी स्वयं इन सबका उत्पादन रोक देती है। हर वस्तु भगवान् की है, अतः उनको प्रसन्न करने के लिए हर वस्तु का उपयोग हो सकता है। वस्तुओं का उपभोग जीवात्माओं की इन्द्रिय-तुष्टि हेतु नहीं होना चाहिए। इस भौतिक प्रकृति के आदेशानुसार यही प्रकृति की पूरी व्यवस्था है।

इस श्लोक में दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं—*असद्भिः* तथा *अधृतव्रतैः असद्भिः* का तात्पर्य अभक्त है। *भगवद्गीता* में अभक्तों को *दुष्कृतिनः* (दुष्ट); *मूढाः* (गधे या धूर्त); *नराधमाः* (मनुष्यों में सबसे पतित) तथा *माययापहृत-ज्ञानाः* (वे जिन्होंने माया शक्ति के कारण ज्ञान खो दिया है) कहा गया है। ये सभी *असत्* अर्थात् अभक्त लोग हैं। अभक्तों को *गृह-व्रत* भी कहा गया है, जबकि भक्त *धृतव्रत* कहलाते हैं। समस्त वैदिक व्यवस्था यही है कि दिग्भ्रमित बद्धजीवों को, जो भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व जताने आये हैं, *धृत-व्रत* बनने की शिक्षा दी जाये। इसका अर्थ यह हुआ उन्हें इसका व्रत लेना चाहिए

कि वे परमेश्वर की इन्द्रियों को तुष्ट करके ही अपनी इन्द्रियों की तुष्टि करेंगे या भौतिक जीवन का सुख भोगेंगे। परमेश्वर श्रीकृष्ण की इन्द्रियतुष्टि के लिए किये गये कार्यकलाप *कृष्णार्थेऽखिलचेष्टा:* कहलाते हैं। इससे यह सूचित होता है कि मनुष्य सभी प्रकार के कार्य कर सकता है, किन्तु ये सब कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए किये जाने चाहिए। *भगवद्गीता* में इसे *यज्ञार्थात्* कर्म कहा गया है। यज्ञ शब्द का अर्थ भगवान् विष्णु है। हमें केवल उन्हीं को प्रसन्न करने के लिये कार्य करना है। किन्तु आधुनिक युग (कलियुग) में लोगों ने विष्णु को एकदम भुला दिया है और वे इन्द्रियतुष्टि के लिए कार्य करते हैं। ऐसे लोग क्रमश: निर्धन होते जाएँगे, क्योंकि वे उन वस्तुओं को अपनी इन्द्रिय तुष्टि के लिए प्रयोग न कर सकेंगे जो परमेश्वर के द्वारा उपभोग्य हैं। यदि वे ऐसा ही करते रहे तो अन्तत: निर्धनता आ जाएगी और अन्न, फल या फूल नहीं उत्पन्न होंगे। *भागवत्* के बारहवें स्कंध में बताया गया है कि कलियुग के अन्त में लोग इतने दूषित हो चुकेंगे कि अन्न, गेहूँ, गन्ना या दूध कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा।

अपालितानादृता च भवद्भिर्लोकपालकै: ।
चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधी: ॥ ७॥

शब्दार्थ

अपालिता—किसी रक्षा के बिना; अनादृता—उपेक्षित; च—भी; भवद्भि:—आपके समान; लोक-पालकै:—अध्यक्षों या राजाओं द्वारा; चोरी-भूते—चोरों से आक्रान्त होकर; अथ—अत:; लोके—इस संसार में; अहम्—मैंने; यज्ञ-अर्थे—यज्ञ सम्पन्न करने के हेतु; अग्रसम्—छिपा ली हैं; ओषधी:—सभी जड़ी-बूटियाँ तथा अनाज।

हे राजन्, अभक्तों द्वारा अन्न तथा जड़ी-बूटियों का उपयोग तो किया ही जा रहा है, मेरी भी ठीक से देखभाल नहीं की जा रही। मेरी उन राजाओं द्वारा उपेक्षा हो रही है, जो उन चोरों को दण्ड नहीं दे रहे जो अन्न का उपयोग इन्द्रियतुष्टि के लिए कर रहे हैं। फलस्वरूप मैंने उन समस्त बीजों को छिपा लिया है, जो यज्ञ सम्पन्न करने के निमित्त हैं।

तात्पर्य : जो कुछ पृथु महाराज तथा उनके पिता राजा वेन के काल में घटित हुआ था, वह आज भी हो रहा है। बड़े पैमाने पर औद्योगिक तथा कृषि उत्पादों के उत्पादन हेतु वृहद् आयोजन सामने आते हैं, किन्तु ये सारे उत्पादन इन्द्रिय-तुष्टि के निमित्त हैं। अत: उत्पादन क्षमता होते हुए भी अभाव छाया रहता है, क्योंकि संसार चोरों से भरा पड़ा है। *चोरीभूते* शब्द इस बात का सूचक है कि जनता चौर-वृत्ति पर उतर आई है। वैदिक ज्ञान के अनुसार मनुष्य तभी चोर बनते हैं जब वे इन्द्रियतृप्ति हेतु

आर्थिक विकास की योजनाएँ बनाते हैं। *भगवद्गीता* में भी बताया गया है कि यदि कोई यज्ञ किये बिना अर्थात् भगवान् को अर्पित किये बिना अन्न खाता है, तो वह चोर है और दण्डनीय है। आध्यात्मिक साम्यवाद के अनुसार इस भूमण्डल की सारी सम्पति भगवान् की है। जनता का अधिकार है कि भगवान् को भेंट अर्पित करने के बाद ही वस्तुओं का प्रयोग करे। प्रसाद ग्रहण करने की यही विधि है। जब तक कोई इस विधि से प्रसाद ग्रहण नहीं करता, वह निश्चित रूप से चोर है। यह राजाओं तथा लोकपालों का कर्तव्य है कि ऐसे चोरों को दण्ड दें और विश्व का उत्तम रीति से पालन करे। यदि ऐसा नहीं होता तो अन्न नहीं उत्पन्न होगा और लोग भूखों मरेंगे। इससे लोगों को कम भोजन तो मिलेगा ही, वे एक दूसरे को मार कर खाएँगे। वे पहले से ही मांस के लिए पशुओं का वध कर रहे हैं, अत: जब अन्न, शाक तथा फल नहीं होंगे तो वे अपने बाप-बेटों को मार कर अपना उदर-पोषण करेंगे।

नूनं ता वीरुध: क्षीणा मयि कालेन भूयसा ।
तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

नूनम्—अत:; ता:—वे; वीरुध:—ओषधियाँ, जड़ी-बूटियाँ तथा अन्न; क्षीणा:—जीर्ण-शीर्ण; मयि—मुझमें; कालेन—समय के साथ; भूयसा—अत्यधिक; तत्र—अत:; योगेन—समुचित साधनों से; दृष्टेन—पूर्व आचार्यों द्वारा संस्तुत; भवान्—आप; आदातुम्—लेने के लिए; अर्हति—चाहिए।

मेरे भीतर दीर्घ काल से भीगे रहने के कारण सारे धान्य-बीज निश्चित रूप से जीर्ण हो चुके हैं। अत: आप तुरन्त आचार्यों अथवा शास्त्रों द्वारा बताई गई मानक विधि से उन्हें निकालने की व्यवस्था करें।

तात्पर्य : जब अन्न का अभाव हो तो सरकार को चाहिए कि शास्त्रों में वर्णित तथा आचार्यों द्वारा अनुमोदित विधियों का पालन करे। इस प्रकार प्रचुर अन्न उत्पादन होगा और अन्नाभाव तथा दुर्भिक्ष को रोका जा सकेगा। *भगवद्गीता* में यज्ञ करने के लिए कहा गया है। यज्ञ करने से आकाश में पर्याप्त बादल एकत्र होते हैं जिससे पर्याप्त वर्षा होती है। इस तरह खेती-बाड़ी की देखभाल हो जाती है। जब पर्याप्त अन्नोत्पादन होता है, तो जनता अन्न खाती है और गायों, बकरियों जैसे घरेलू पशुओं को भी प्रचुर घास तथा अन्न खाने को मिलता है। इस व्यवस्था के अनुसार यदि मनुष्य यज्ञ करें तो अन्नाभाव

दूर हो जायेगा। कलियुग में केवल *संकीर्तन यज्ञ* की संस्तुति की गई है।

इस श्लोक में *योगेन* अर्थात् ''स्वीकृत विधियों'' तथा *दृष्टेन* अर्थात् ''पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिखाई गई'' शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। यदि कोई यह सोचता है कि आधुनिक यंत्रों—यथा ट्रैक्टरों—के द्वारा अन्न उत्पन्न किया जा सकता है, तो यह उसकी भूल है। यदि कोई रेगिस्तान में जाए और ट्रैक्टर चलाए तो भी अन्न पैदा नहीं होगा। हम नाना प्रकार की विधियाँ अपना सकते हैं, किन्तु यह जानना नितान्त आवश्यक है कि यदि यज्ञ नहीं किये जाएँगे तो पृथ्वी अन्न उत्पन्न करना बन्द कर देगी। पृथ्वी ने पहले ही बता दिया है कि अभक्त लोग अन्न का उपभोग कर रहे हैं, इसलिए उसने यज्ञ के लिए अन्न सुरक्षित कर रखा है। अब नास्तिक यह नहीं मानेंगे कि अन्न आध्यात्मिक विधि से उत्पन्न किया जा सकता है, किन्तु वे मानें या नहीं, तथ्य तो यही है कि हम यांत्रिक विधि से अन्न उत्पन्न नहीं कर सकते। जहाँ तक स्वीकृत विधि का सवाल है, शास्त्रों में कहा गया है कि इस युग के बुद्धिमान लोग *संकीर्तन यज्ञ* को अपनाएँगे, इससे वे भगवान् श्री चैतन्य की पूजा करेंगे जिनके शरीर का रंग सुनहरा है और जिनके साथ उनके विश्वासपात्र भक्त रहते हैं, जो सारे संसार में इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का सदुपदेश करते हैं। वर्तमान परिस्थिति में इस *संकीर्तन* को प्रचलित करके ही संसार को बचाया जा सकता है। हमने पिछले श्लोक में पढ़ा है कि जो कृष्णभक्त नहीं है, वह चोर है। चोर भौतिक दृष्टि से कितना ही सम्पन्न क्यों न हो उसे समुचित पद प्रदान नहीं किया जा सकता। चोर चोर है और वह दण्डनीय है। कृष्णभक्त न होने के कारण लोग चोर बने हैं, फलत: उन्हें प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत दण्ड मिल रहा है। कोई इसे रोक नहीं सकता। भले ही कितने ही राहत-फण्ड तथा मानवतावादी संस्थाएँ क्यों न खोल दी जायँ, जब तक लोग कृष्णचेतना (भक्ति) ग्रहण नहीं करते, तब तक अन्नाभाव तथा कष्ट बना रहेगा।

वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ।
धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥ ९ ॥
दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन ।
अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

वत्सम्—बछड़ा; कल्पय—व्यवस्था करो; मे—मेरे लिए; वीर—हे वीर; येन—जिससे; अहम्—मैं; वत्सला—स्नेहपूर्ण; तव—तुम्हारा; धोक्ष्ये—पूरी करूँगी; क्षीर-मयान्—दूध के रूप में; कामान्—इच्छित वस्तुएँ; अनुरूपम्—विभिन्न जीवात्माओं के

अनुसार; च—भी; दोहनम्—दोहनी, पात्र; दोग्धारम्—दुहनेवाला; च—भी; महा-बाहो—हे सशक्त भुजाओंवाले; भूतानाम्—समस्त जीवात्माओं के; भूत-भावन—जीवात्माओं के रक्षक; अन्नम्—अन्न; ईप्सितम्—वांछित; ऊर्जः-वत्—पोषणयुक्त; भगवान्—पूज्य आप; वाञ्छते—इच्छा करते हैं; यदि—यदि।

हे परम वीर, जीवात्माओं के रक्षक, यदि आप जनता को प्रचुर अन्न देकर उनके कष्टों का निवारण करना चाहते हैं और यदि आप मुझे दुह कर उनका पोषण करना चाहते हैं, तो इसके लिए आपको उपयुक्त बछड़ा तथा दूध रखने के लिए दोहनी की व्यवस्था करनी होगी। साथ ही दुहनेवाले का भी प्रबन्ध करना होगा। चूँकि मैं अपने बछड़े के प्रति अत्यन्त वत्सला हूँगी, अतः मुझसे दुग्ध प्राप्त करने की आपकी मनोकामना पूरी हो जाएगी।

तात्पर्य : गाय दुहने के लिए ये उत्तम आदेश हैं। गाय के लिए सर्वप्रथम बछड़ा चाहिए जिसके स्नेह से गाय स्वेच्छा से अधिक दूध दे सकेगी। इसके साथ ही पटु दुहनेवाला तथा दूध रखने के लिए पात्र (दोहनी) भी चाहिए। जिस प्रकार गाय बछड़े के प्रति वत्सल हुए बिना अधिक दूध नहीं दे सकती, उसी प्रकार पृथ्वी भी कृष्णभक्तों के प्रति वत्सल हुए बिना प्रचुर अन्न उत्पन्न नहीं कर सकती। यद्यपि गोरूप में पृथ्वी को अलंकारिक शैली से व्यक्त किया गया है, किन्तु इसका भावार्थ अत्यन्त सुस्पष्ट है। जिस प्रकार बछड़ा गाय से दूध निकलवा सकता है, उसी प्रकार समस्त जीवात्माएँ जिनमें पशु, पक्षी, मधुमक्खी, सर्प तथा जलचर सम्मिलित हैं, पृथ्वी से तभी अपना-अपना भोजन प्राप्त कर सकते हैं जब वे *असत्* या *अधृत-व्रत* न हों, जैसाकि पहले कहा जा चुका है। जब मानव समाज *असत्* अथवा कृष्णचेतनाशून्य हो जाता है, तो सारे संसार को दुख उठाना पड़ता है। यदि मनुष्य सदाचरण करें तो पशुओं को भी पर्याप्त भोजन मिलेगा और वे सुखी रहेंगे। ईश्वरविहीन मानव पशुओं को सुरक्षा तथा उनके भोजन के प्रति अपने कर्तव्य को न समझ कर अन्न के अभाव की पूर्ति के लिए उनका वध करता है। इस प्रकार कोई भी सुखी नहीं रहता और विश्व की वर्तमान दशा का यही कारण है।

समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः ।
अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

समाम्—समतल; च—भी; कुरु—करो; माम्—मुझको; राजन्—हे राजा; देव-वृष्टम्—इन्द्र की कृपा से होनेवाली वर्षा; यथा—जिससे; पयः—जल; अप-ऋतौ—वर्षा ऋतु के न रहने पर; अपि—भी; भद्रम्—कल्याण; ते—तुम तक; उपावर्तेत—यह रुक सकता है; मे—मुझ पर; विभो—हे भगवान्।

हे राजन्, मैं आपको बता रही हूँ कि आपको समस्त भूमण्डल की सतह समतल बनानी होगी। वर्षा ऋतु न रहने पर भी इससे मुझे सहायता मिलेगी। राजा इन्द्र की कृपा से वर्षा होती है। इससे वर्षा का जल भूमण्डल पर टिका रहेगा जिससे पृथ्वी सदैव आर्द्र (नम) रहेगी और इस प्रकार से यह सभी तरह के उत्पादन के लिए शुभ होगा।

तात्पर्य : स्वर्ग का राजा इन्द्र वर्षा करने तथा वज्र गिराने का प्रभारी है। सामान्यत: पर्वतों के ऊपर वज्र गिरा कर उन्हें चूर-चूर किया जाता है। ये प्रस्तर-खण्ड कालान्तर में फैल जाते हैं और पृथ्वी की सतह कृषि योग्य हो जाती हैं। समतल भूमि अनाज के उत्पादन के लिए विशेष रूप से उपयोगी होती है। इस प्रकार पृथ्वी ने महाराज पृथु से निवेदन किया कि वे ऊँची भूमि तथा पर्वतों को तोड़ कर पृथ्वी की सतह को समतल बनाएँ।

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपति: ।
वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधी: ॥ १२॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; प्रियम्—अच्छे लगनेवाले; हितम्—उपयोगी, लाभप्रद; वाक्यम्—शब्द; भुव:—पृथ्वी के; आदाय—विचार करके; भू-पति:—राजा; वत्सम्—बछड़ा; कृत्वा—बनाकर; मनुम्—स्वायंभुव मनु को; पाणौ—हाथों में; अदुहत्—दुहा; सकल—समस्त; ओषधी:—जड़ी-बूटियाँ तथा अन्न।

पृथ्वी के कल्याणकारी तथा प्रिय वचनों को राजा ने अंगीकार कर लिया। तब उन्होंने स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाया और गोरूप पृथ्वी से समस्त ओषधियों और अन्न का दोहन कर के उन्हें अपनी अंजुली में भर लिया।

तथापरे च सर्वत्र सारमाददते बुधा: ।
ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहु: पृथुभाविताम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

तथा—उसी तरह; अपरे—अन्य; च—भी; सर्वत्र—सभी जगह; सारम्—रस, निचोड़; आददते—ग्रहण कर लिया; बुधा:—बुद्धिमान पुरुष; तत:—तत्पश्चात्; अन्ये—अन्य लोग; च—भी; यथा-कामम्—इच्छानुसार; दुदुहु:—दुह लिया; पृथु-भाविताम्—महाराज पृथु के वश में हुई पृथ्वी को।

अन्य लोगों ने, जो महाराज पृथु के ही समान बुद्धिमान थे, पृथ्वी में से सार निकाल लिया। निस्सन्देह, प्रत्येक व्यक्ति ने राजा पृथु के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए इस अवसर का लाभ

उठाया और पृथ्वी से अपनी मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त कीं।

तात्पर्य : पृथ्वी को *वसुन्धरा* भी कहते हैं। *वसु* का अर्थ है ''धन'' तथा *धरा* का अर्थ होता है ''धारण करनेवाला।'' इस पृथ्वी के भीतर के सभी प्राणी मनुष्यों की आवश्यकता को पूरा करते हैं और पृथ्वी में से इन समस्त जीवात्माओं को समुचित साधनों से बाहर निकाला जा सकता है। जैसाकि पृथ्वी द्वारा प्रस्तावित और राजा पृथु द्वारा स्वीकृत किया गया कि जो कुछ भी पृथ्वी के भीतर से लिया जाता है—चाहे खानों में से लिया जाता है, या भूमण्डल की सतह में से या कि वायुमण्डल में से, हर वस्तु को सदा पुरुषोत्तम भगवान् की सम्पत्ति मानना चाहिए और उसे यज्ञ अर्थात् भगवान् विष्णु के उपयोग में लगाना चाहिए। ज्योंही यह यज्ञविधि बन्द कर दी जाती है, पृथ्वी सारा उत्पादन—शाक, वृक्ष, पौधे, फल, खनिज पदार्थों आदि को अपने में रोक लेगी। जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गयी है यज्ञ की स्थापना सृष्टि के प्रारम्भ में ही की गई थी। नियमित रूप से यज्ञ करने, सम्पत्ति के समान-वितरण तथा इन्द्रियतुष्टि के नियमन से सारा जगत शान्तिमय तथा समृद्धिमय हो जाएगा। जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि इस कलियुग में *संकीर्तन यज्ञ* अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ द्वारा प्रचारित उत्सवों को प्रत्येक शहर तथा गाँव में करना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्तियों को अपने व्यक्तिगत आचरण से *संकीर्तन यज्ञ* सम्पन्न करने को प्रोत्साहित करना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्हें अवैध मैथुन, मांसाहार, द्यूतक्रीड़ा तथा मादक द्रव्य सेवन से बचना चाहिए। यदि समाज के बुद्धिमान व्यक्ति अथवा समाज कर ब्राह्मण वर्ग विधि-विधानों का पालन करें तो वर्तमान विश्व की पूरी स्थिति, जो कि अस्तव्यस्त अवस्था में है, अवश्य ही सुधर जाये और लोग सुखी तथा सम्पन्न बन जाँय।

ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम ।
वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि ॥ १४॥

शब्दार्थ

ऋषयः—ऋषियों ने; दुदुहुः—दुहा; देवीम्—पृथ्वी को; इन्द्रियेषु—इन्द्रियों में; अथ—तब; सत्तम—हे विदुर; वत्सम्—बछड़ा; बृहस्पतिम्—बृहस्पति मुनि को; कृत्वा—करके; पयः—दूध; छन्दः-मयम्—वैदिक स्तोत्रों के रूप में; शुचि—शुद्ध।

समस्त ऋषियों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाया और इन्द्रियों को दोहनी। उन्होंने शब्द, मन तथा श्रवण को पवित्र करनेवाले समस्त प्रकार के वैदिक ज्ञान को दुह लिया।

तात्पर्य : बृहस्पति स्वर्ग के पुरोहित हैं। ऋषियों ने तार्किक विधि से बृहस्पति के माध्यम से मानव समाज के लाभ के लिए, न केवल इस लोक में वरन् समस्त ब्रह्माण्डों में वैदिक ज्ञान प्राप्त किया। दूसरे शब्दों में, वैदिक ज्ञान को मानव समाज की आवश्यकता माना जाता है। यदि मानव समाज पृथ्वी से शरीर-भरण के लिए अन्न तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ लेकर सन्तुष्ट हो जाये तो समाज पर्याप्त उन्नति नहीं कर सकता। मानवता के पास मन, कान तथा ध्वनि स्पन्दन (स्फुरण) के लिए समुचित भोजन होना चाहिए। जहाँ तक दिव्य स्फुरण का प्रश्न है, समस्त वैदिक ज्ञान का सार हरे कृष्ण महामंत्र है। यदि कलियुग में इस वैदिक महामंत्र का नित्य श्रवणं-कीर्तन की भक्तिमयी विधि से श्रवण तथा कीर्तन होता रहे तो समस्त समाज पवित्र हो जाए और मानवता भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप से सुखी रहे।

कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् ।
हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

कृत्वा—बनाकर; वत्सम्—बछड़ा; सुर-गणाः—देवताओं ने; इन्द्रम्—स्वर्ग के राजा इन्द्र को; सोमम्—अमृत; अदूदुहन्—दुह लिया; हिरण्मयेन—सोने के; पात्रेण—पात्र से; वीर्यम्—मानसिक शक्ति; ओजः—इन्द्रियों की शक्ति; बलम्—शारीरिक शक्ति; पयः—दूध।

समस्त देवताओं ने स्वर्ग के राजा इन्द्र को बछड़ा बनाया और उन्होंने पृथ्वी में से सोम रस अर्थात् अमृत दुह लिया। इस प्रकार वे मानसिक, शारीरिक तथा ऐन्द्रिय शक्ति में अत्यन्त बलशाली हो गये।

तात्पर्य : इस श्लोक में *सोम* का अर्थ अमृत है। *सोम* एक प्रकार का पेय है, जो स्वर्गलोक में चन्द्रमा से लेकर विभिन्न उच्च लोकों में देवलोकों तक बनाया जाता है। सोम नामक इस पेय को पीकर देवता मन से, इन्द्रिय से तथा शरीर से अधिक शक्तिशाली हो उठते हैं। *हिरण्मयेन पात्रेण* से सूचित होता है कि यह सोम रस सामान्य मादक शराब नहीं है। देवता किसी प्रकार का मादक पेय नहीं छूते थे। और न सोम कोई दवा है। यह एक भिन्न प्रकार का पेय है, जो स्वर्गलोक में उपलब्ध है। असुरों द्वारा तैयार की जानेवाली शराब से सोम सर्वथा भिन्न है। जैसाकि अगले श्लोक में बताया गया है।

दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ।

विधायादूदुहन्क्षीरमय:पात्रे सुरासवम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

दैतेया:—दिति के पुत्र; दानवा:—असुरों ने; वत्सम्—बछड़ा; प्रह्लादम्—प्रह्लाद महाराज को; असुर—दानव; ऋषभम्—प्रधान; विधाय—बनाकर; अदूदुहन्—दुह लिया; क्षीरम्—दूध; अय:—लोह; पात्रे—पात्र में; सुरा—शराब; आसवम्—खमीर से बनाया गया द्रव यथा यवसुरा।

दिति के पुत्रों तथा असुरों ने असुर-कुल में उत्पन्न प्रह्लाद महाराज को बछड़ा बनाया और उन्होंने अनेक प्रकार की सुरा तथा आसव निकाल कर उसे लोहे के पात्र में रख दिया।

तात्पर्य : असुरों के अपने पेय हैं, जो सुरा तथा यवसुरा के रूप में होते हैं, ठीक वैसे ही जैसे देवता सोमरस का पान करते हैं। दिति से उत्पन्न असुरजन सुरा तथा यवसुरा पीकर प्रसन्न रहते हैं। आज के समय में भी आसुरी वृत्ति वाले लोग सुरा तथा यवसुरा ही पीने के आदी होते हैं। इस प्रसंग में प्रह्लाद महाराज का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चूँकि प्रह्लाद महाराज हिरण्यकशिपु के पुत्र रूप में असुरों के कुल में उत्पन्न हुए थे, अत: उनकी कृपा से असुरगण तब से आज तक सुरा तथा यवसुरा पीते आ रहे हैं। *अय:* (लोहा) शब्द भी महत्त्व का है। जहाँ अमृतमय सोम को स्वर्णपात्र में रखा जाता था, वहीं सुरा तथा यवसुरा लोहपात्र में रखी जाती थीं। सोमरस श्रेष्ठ होने के कारण स्वर्णपात्र में रखा जाता है और सुरा तथा यवसुरा निकृष्ट होने से लोह पात्र में।

गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पय: ।
वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

गन्धर्व—गन्धर्व लोक के वासी; अप्सरस:—अप्सरा लोक के वासी; अधुक्षन्—दुह लिया; पात्रे—पात्र में; पद्म-मये—कमल के; पय:—दूध; वत्सम्—बछड़ा; विश्वावसुम्—विश्वावसु को; कृत्वा—बना कर; गान्धर्वम्—गीत; मधु—मीठा, मधुर; सौभगम्—सुन्दरता।

गन्धर्व लोक तथा अप्सरालोक के निवासियों ने विश्वावसु को बछड़ा बनाया और कमल पुष्प के पात्र में दूध दुहा। इस दूध ने मधुर संगीत-कला तथा सुन्दरता का रूप धारण किया।

वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत ।
आमपात्रे महाभागा: श्रद्धया श्राद्धदेवता: ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

वत्सेन—बछड़े से; पितरः—पितृलोक के वासी; अर्यम्णा—पितृलोक के देव अर्यमा से; कव्यम्—पितरों को दी जानेवाली बलि; क्षीरम्—दूध; अधुक्षत—निकाला; आम-पात्रे—मिट्टी के कच्चे पात्र में; महा-भागाः—अत्यन्त भाग्यशाली; श्रद्धया—अत्यन्त श्रद्धा समेत; श्राद्ध-देवताः—मृत परिजनों के सम्मान में किये जानेवाले श्राद्ध कर्म के मुख्य देवता.

श्राद्ध कर्म के मुख्य देवता एवं पितृलोक के भाग्यशाली निवासियों ने अर्यमा को बछड़ा बनाया। उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा सहित मिट्टी के कच्चे पात्र में कव्य (पितरों को दी जानेवाली बलि) दुह लिया।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२५) में कहा गया है—*पितॄन् यान्ति पितृ-व्रताः*। जो लोग परिवार-कल्याण में रुचि रखते हैं, वे *पितृ-व्रताः* कहलाते हैं। पितृलोक नाम का एक लोक है और इसका प्रधान विग्रह *अर्यमा* कहलाता है। वह कुछ-कुछ देवता जैसा है, जिसे प्रसन्न कर लेने से परिवार के प्रेतों को स्थूल शरीर प्राप्त होता है। जो पापी होते हैं और अपने परिवार, घर, गाँव या देश के प्रति आसक्त रहते हैं उन्हें भौतिक तत्त्वों से निर्मित देह प्राप्त नहीं होती, वरन् मन, अहंकार तथा बुद्धि से युक्त सूक्ष्म शरीर मिलता है। जिन्हें ऐसी सूक्ष्म देह प्राप्त होती है, वे प्रेत कहलाते हैं। यह प्रेतस्थिति अत्यन्त कष्टप्रद होती है क्योंकि भूत-प्रेत बुद्धि, मन तथा अहंकार होने के कारण भौतिक जीवन व्यतीत करना चाहता है, किन्तु स्थूल शरीर न होने से वह ऐसा नहीं कर पाता और भौतिक तुष्टि के अभाव में वह उपद्रव मचाता रहता है। पारिवारिक सदस्यों, विशेष रूप से पुत्र का यह कर्तव्य है कि अर्यमा को या भगवान् विष्णु को पिंड दे। भारत में अनन्त काल से मृत व्यक्ति का पुत्र गया जाता है और वहाँ पर एक विष्णु मन्दिर में अपने प्रेतात्मा पिता को पिंड देता है। ऐसा नहीं है कि सबों के पिता प्रेत बनते हैं, किन्तु भगवान् विष्णु के चरणों पर पिण्डदान दिया जाता है, जिससे यदि किसी के परिवार का कोई व्यक्ति प्रेत बने तो उसे स्थूल देह प्राप्त हो। किन्तु यदि कोई विष्णु प्रसाद प्राप्त करता रहता है, तो उसके प्रेत होने या मनुष्य से निम्न योनि में जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। वैदिक सभ्यता में श्राद्ध कर्म होता है, जिसमें अत्यन्त श्रद्धा तथा भक्ति से भोजन दिया जाता है। यदि कोई विष्णु के चरणकमलों पर या उनके पितृलोक के प्रतिनिधि अर्यमा को श्रद्धा समेत पिंड प्रदान करता है, तो उसके पूर्वजों को भौतिक शरीर प्राप्त होता है, जिससे वे अपने हिस्से का भौतिक सुख भोग सकते हैं, अर्थात् उन्हें प्रेत नहीं बनना पड़ता।

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः सङ्कल्पनामयीम् ।
सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

प्रकल्प्य—नियुक्त करके; वत्सम्—बछड़ा; कपिलम्—कपिल मुनि को; सिद्धाः—सिद्धलोक के वासी; सङ्कल्पना-मयीम्—इच्छा से आगे बढ़नेवाली; सिद्धिम्—योगशक्तियाँ; नभसि—आकाश में; विद्याम्—ज्ञान; च—भी; ये—जो; च—भी; विद्याधर-आदयः—विद्याधर लोक के वासी तथा अन्य।

तत्पश्चात् सिद्धलोक तथा विद्याधरलोक के वासियों ने कपिल मुनि को बछड़ा बनाया और सम्पूर्ण आकाश को पात्र बना कर अणिमादि सारी योगशक्तियाँ दुह लीं। निस्सन्देह, विद्याधर लोक के वासियों ने आकाश में उड़ने की कला प्राप्त की।

तात्पर्य : सिद्धलोक तथा विद्याधरलोक इन दोनों लोकों के वासियों को स्वभावत: योगशक्तियाँ प्राप्त हैं जिनके द्वारा वे न केवल अन्तरिक्ष में ही किसी यान के बिना उड़ सकते हैं वरन् इच्छानुसार एक लोक से दूसरे लोक को भी उड़कर जा सकते हैं। जिस प्रकार मछलियाँ जल में तैरती हैं उसी प्रकार विद्याधर-लोक के वासी आकाश-समुद्र में तैरते हैं। जहाँ तक सिद्धलोक के वासियों का प्रश्न है, उनमें समस्त योग-शक्तियाँ पाई जाती हैं। इस लोक के योगी आठों यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करते हैं। ये हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। यौगिक क्रियाओं का क्रमश: नियमित अभ्यास करते रहने से, योगियों को विभिन्न सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये हैं अणिमा, लघिमा इत्यादि। यहाँ तक कि वे ग्रह का निर्माण भी कर सकते हैं और जो भी चाहते हैं प्राप्त कर सकते हैं और जिस जिस व्यक्ति पर नियंत्रण करने चाहें कर सकते हैं। इस प्रकार सिद्धलोक के समस्त वासी स्वभावत: इन योग-शक्तियों से सम्पन्न होते हैं। वास्तव में यह विस्मयजनक बात होगी यदि हम इस लोक में किसी को बिना यान के आकाश में उड़ता देखें, किन्तु विद्याधरलोक में यह उसी तरह आम बात है, जिस प्रकार कि पक्षी का आकाश में उड़ना। इसी प्रकार, सिद्धलोक के सभी वासी योगी हैं।

इस श्लोक में कपिल मुनि का नाम महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वे सांख्य दर्शन के संस्थापक थे और उनके पिता कर्दम मुनि महान् योगी थे। कर्दम मुनि ने तो ऐसा विमान तैयार किया था, जो एक छोटे नगर के बराबर था जिसमें नानाविध उद्यान, भवन, दास तथा दासियाँ थे। इस साज-सामान के साथ कपिलदेव की माता देवहूति और उनके पिता कर्दम मुनि ने समस्त ब्रह्माण्डों की यात्रा की और विभिन्न

लोकों में गये।

अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानाद्भुतात्मनाम् ।
मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य; च—भी; मायिनः—मायावी जादूगर; मायाम्—मायावी शक्तियाँ; अन्तर्धान—अदृश्य होने; अद्भुत—आश्चर्यजनक; आत्मनाम्—शरीर का; मयम्—मय नामक असुर को; प्रकल्प्य—बनाकर; वत्सम्—बछड़ा; ते—उन्होंने; दुदुहुः—दुहा; धारणामयीम्—इच्छा से उत्पन्न होनेवाली।

किम्पुरुष-लोक के वासियों ने भी मय दानव को बछड़ा बनाया और उन्होंने योगशक्तियाँ दुह लीं जिनसे मनुष्य किसी दूसरे की दृष्टि से तुरन्त ओझल हो सकता है और अन्य किसी रूप में पुनः प्रकट हो सकता है।

तात्पर्य : कहा जाता है कि किम्पुरुष-लोक के वासी अनेक आश्चर्यजनक यौगिक प्रदर्शन कर सकते हैं, अर्थात् जितनी भी आश्चर्यजनक वस्तुओं की कल्पना की जा सकती है, उन्हें वे प्रदर्शित कर सकते हैं। इस लोक के वासी जो चाहें या जो भी कल्पना कर सकें उसे कर सकते हैं। ऐसी शक्तियां भी यौगिक शक्तियां है। ऐसी योगशक्ति की प्राप्ति *ईशिता* कहलाती है। असुर ऐसी शक्ति सामान्यतः योगाभ्यास से प्राप्त करते हैं। *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कंध में सजीव वर्णन है कि श्रीकृष्ण के समक्ष असुरगण किन भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। उदाहरणार्थ, बकासुर एक विशाल बगुले के रूप में श्रीकृष्ण तथा गोपों के समक्ष प्रकट हुआ था। इस लोक में रहते हुए भगवान् कृष्ण को अनेक असुरों से लड़ना पड़ा जो किम्पुरुष की मायावी शक्तियाँ प्रदर्शित कर सकते थे। यद्यपि किम्पुरुषलोक के वासियों को ऐसी शक्तियाँ स्वभावतः प्राप्त हैं, किन्तु इस लोक में विभिन्न यौगिक अभ्यासों से ये शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।

यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ।
भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यक्ष—यक्षगण (कुबेर के वंशज); रक्षांसि—राक्षसगण (मांसभक्षी); भूतानि—भूतों; पिशाचाः—पिशाचों ने; पिशित-अशनाः—मांस खाने के अभ्यस्त; भूतेश—रुद्र रूपी शिव-अवतार; वत्साः—बछड़ा; दुदुहुः—दुह लिया; कपाले—कपाल के पात्र में; क्षत-ज—रक्त; आसवम्—खमीर उठा पेय।

तब मांसाहार के आदी यक्षों, राक्षसों, भूतों तथा पिशाचों ने श्री शिव के अवतार रुद्र (भूतनाथ) को बछड़ा बनाया और रक्त से निर्मित पेय पदार्थों को दुहकर उन्हें कपालों से बने पात्रों में रखा।

तात्पर्य : मनुष्यों के रूप में कुछ प्रकार की जीवात्माएँ ऐसी भी हैं जिनका रहन-सहन तथा भोज्य पदार्थ अत्यन्त घृणित है। सामान्य रूप से वे मांस तथा खमीर उठे रक्त का भोजन करते हैं, जिसे इस श्लोक में *क्षतजासवम्* कहा गया है। ऐसे अधम पुरुषों के अगुआ, जिन्हें यक्ष, राक्षस, भूत तथा पिशाच कहा जाता है, तमोगुणी होते हैं। ये रुद्र के अधीन आते हैं। रुद्र शिव के अवतार हैं और प्रकृति के तमोगुण के स्वामी हैं। शिवजी का दूसरा नाम भूतनाथ है, जिसका अर्थ है, ''भूतों के स्वामी।'' रुद्र का जन्म ब्रह्मा के नेत्रों के मध्य, भ्रूकुटियों से तब हुआ जब वे चार कुमारों पर अत्यन्त कुपित हो गये थे।

तथाहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् ।
विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥ २२॥

शब्दार्थ

तथा—उसी प्रकार; अहयः—बिना फनवाले साँप; दन्दशूकाः—बिच्छू; सर्पाः—फनवाले साँप; नागाः—बड़े सर्प; च—तथा; तक्षकम्—सर्पों के प्रमुख, तक्षक को; विधाय—बनाकर; वत्सम्—बछड़ा; दुदुहुः—दुह लिया; बिल-पात्रे—साँप के बिल रूपी पात्र में; विषम्—विष; पयः—दूध के रूप में।

तत्पश्चात् फनवाले तथा बिना फनवाले साँपों, नागों, बिच्छुओं तथा अन्य विषैले पशुओं ने पृथ्वी के दूध के रूप में अपना-अपना विष दुह लिया और इस विष को साँप के बिलों में रख दिया। उन्होंने तक्षक को बछड़ा बनाया था।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में विविध प्रकार की जीवात्माएँ हैं और इस श्लोक में उल्लिखित विभिन्न प्रकार के रेंगनेवाले जीव तथा बिच्छुओं के जीवन-निर्वाह की व्यवस्था भगवान् ने की है। बात यह है कि इस पृथ्वी से सभी जीव अपनी-अपनी खाद्य-वस्तुएँ प्राप्त करते हैं। भौतिक गुणों की संगति के अनुसार ही किसी एक प्रकार का चरित्र विकसित होता है। *पयः पानं भुजंगानाम्*—यदि कोई साँप को दूध पिलाता है, तो इससे उसका विष ही बढ़ता है। किन्तु यदि यही दूध किसी प्रतिभाशाली मुनि या सन्त को दिया जाये तो उसके मस्तिष्क में ऐसे ऊतक बनेंगे जिनसे वह उच्च आध्यात्मिक चिन्तन कर सकता है। इस प्रकार भगवान् हर एक को भोजन देते हैं, किन्तु जीवात्मा भौतिक प्रकृति के जिस

प्रकार के गुणों के सम्पर्क में आता है उसी के अनुसार वह अपना विशिष्ट चरित्र ढालता है।

पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ।
अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥ २३॥
क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे ।
सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाचरमेव च ॥ २४॥

शब्दार्थ

पशवः—पशु; यवसम्—हरी घास को; क्षीरम्—दूध; वत्सम्—बछड़ा; कृत्वा—बनाकर; च—भी; गो-वृषम्—शिवजी का वाहन, बैल; अरण्य-पात्रे—जंगल रूपी पात्र में; च—भी; अधुक्षन्—दुहा; मृग-इन्द्रेण—सिंह के द्वारा; च—तथा; दंष्ट्रिणः—तेज दाँतोंवाले पशु; क्रव्य-अदाः—कच्चा मांस खानेवाले पशु; प्राणिनः—जीवात्माएँ; क्रव्यम्—मांस; दुदुहुः—दुह लिया; स्वे—अपने; कलेवरे—अपने शरीर रूपी पात्र में; सुपर्ण—गरुड़ रूपी; वत्साः—बछड़ा; विहगाः—पक्षी; चरम्—चर जीवात्माएँ; च—भी; अचरम्—अचर (जड़) जीवात्माएँ; एव—निश्चय ही; च—भी।

गायों जैसे चौपाये पशुओं ने शिव के वाहन बैल को बछड़ा और जंगल को दुहने का पात्र बनाया। इस प्रकार उन्हें खाने के लिए ताजी हरी घास मिल गई। बाघों जैसे हिंस्त्र पशुओं ने सिंह को बछड़ा बनाया और इस प्रकार वे दूध के रूप में मांस प्राप्त कर सके। पक्षियों ने गरुड़ को वत्स बनाया और पृथ्वी से चर कीटों तथा अचर घासों तथा पौधों के रूप में दूध प्राप्त किया।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ से अनेक मांसभक्षी पक्षी उत्पन्न हुए हैं। सचमुच ही एक विशेष प्रकार का पक्षी भी होता है, जिसे बन्दरों को खाना बहुत भाता है। चील्हें बकरों को खा जाती है तथा अनेक पक्षी फल तथा बेर ही खाते हैं। इसलिए इस श्लोक में चरम् शब्द चलने फिरनेवाले पशुओं के लिए तथा अचरम् शब्द घासों, फलों, शाकों के लिए प्रयुक्त हुए है।

वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ।
गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून्स्वसानुषु ॥ २५॥

शब्दार्थ

वट-वत्साः—बरगद के वृक्ष को बछड़ा बनाकर, बट रूपी बछड़ा; वनः-पतयः—वृक्षों ने; पृथक्—विभिन्न; रस-मयम्—रसों के रूप में; पयः—दूध; गिरयः—पर्वत; हिमवत्-वत्साः—हिमालय रूपी बछड़ा; नाना—विविध; धातून्—धातुएँ; स्व—अपनी; सानुषु—चोटियों पर।

वृक्षों ने बरगद के पेड़ को बछड़ा बनाकर अनेक सुस्वादु रसों को दूध के रूप में दुह लिया। पर्वतों ने हिमालय को बछड़ा तथा पर्वत शृंगों को पात्र बनाकर नाना प्रकार की धातुएँ दुहीं।

सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक्पयः ।
सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सर्वे—सभी ने; स्व-मुख्य—अपने-अपने प्रधानों द्वारा; वत्सेन—बछड़े के रूप में; स्वे स्वे—अपने-अपने; पात्रे—पात्रों में; पृथक्—भिन्न -भिन्न; पयः—दूध; सर्व-काम—सभी वांछित वस्तु; दुघाम्—दूध के रूप में; पृथ्वीम्—पृथ्वीलोक को; दुदुहुः—दुहा; पृथु-भाविताम्—राजा पृथु द्वारा शासित।

पृथ्वीलोक ने सबों को अपना-अपना भोजन प्रदान किया है। राजा पृथु के काल में, पृथ्वी पूर्ण रूप से राजा के अधीन थी। अतः पृथ्वी के सभी वासी अपना-अपना बछड़ा उत्पन्न करके तथा विभिन्न प्रकार के पात्रों में अपने विशिष्ट प्रकार के दूध को रख कर अपना भोजन प्राप्त कर सके।

तात्पर्य : यह इसका प्रमाण है कि भगवान् हर एक को भोजन प्रदान करते हैं। जैसाकि वेदों में पुष्टि की गई है—*एको बहूनां यो विदधाति कामान्।* यद्यपि भगवान् एक है, किन्तु पृथ्वी के द्वारा वह सबों की आवश्यकताओं को पूरा करता है। विभिन्न लोकों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जीवात्माएँ हैं और वे अपने-अपने लोकों से विभिन्न रूपों में अपनी खाद्य सामग्री प्राप्त करती हैं। इन कथनों के आधार पर भला यह कैसे विश्वास कर लिया जाये कि चन्द्रमा पर जीवात्मा नहीं है? प्रत्येक चन्द्रमा पार्थिव है, क्योंकि यह पाँच तत्त्वों से बना होता है और प्रत्येक लोक अपने-अपने वासियों की आवश्यकतानुसार खाद्य पदार्थ उत्पन्न करता है। वैदिक शास्त्रों के अनुसार यह सच नहीं है कि चन्द्रमा न तो अन्न उत्पन्न करता है और न उसमें कोई जीवात्मा रह रही है।

एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः ।
दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥ २७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; पृथु-आदयः—राजा पृथु तथा अन्यों ने; पृथ्वीम्—पृथ्वी को; अन्न-अदाः—अन्न के इच्छुक समस्त जीव; सु-अन्नम्—अपना वांछित खाद्य पदार्थ; आत्मनः—अपने निर्वाह हेतु; दोह—दुहने के लिए; वत्स-आदि—बछड़े, पात्र तथा दुहनेवाले के द्वारा; भेदेन—विभिन्न; क्षीर—दूध; भेदम्—विभिन्न; कुरु-उद्वह—हे कुरुओं में प्रधान।

हे कुरुश्रेष्ठ विदुर जी, इस प्रकार राजा पृथु तथा अन्नभोजियों ने विभिन्न प्रकार के बछड़े उत्पन्न किये और अपने-अपने खाद्य-पदार्थों को दुह लिया। इस तरह उन्होंने विभिन्न प्रकार के खाद्य-पदार्थ प्राप्त किये जो दूध का प्रतीक हैं।

ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ।
दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; मही-पतिः—राजा; प्रीतः—प्रसन्न होकर; सर्व-काम—समस्त इच्छाएँ; दुघाम्—दूध के रूप में उत्पन्न करनेवाला; पृथुः—राज पृथु; दुहितृत्वे—अपनी पुत्री मानकर; चकार—किया; इमाम्—पृथ्वी को; प्रेम्णा—प्रेम के कारण; दुहितृ-वत्सलः—अपनी पुत्री के प्रति स्नेहमय।

तत्पश्चात् राजा पृथु पृथ्वी से अत्यन्त प्रसन्न हो गये क्योंकि उसने विभिन्न जीवात्माओं के लिए प्रचुर मात्रा में भोजन की पूर्ति की। इस प्रकार पृथ्वी के प्रति राजा स्नेहिल हो उठा, मानो वह उसकी पुत्री हो।

चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ।
भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

चूर्णयन्—खण्ड-खण्ड करते हुए; स्व—अपने; धनुः-कोट्या—धनुष के बल से; गिरि—पर्वतों के; कूटानि—शिखरों को; राज-राट्—सम्राट; भू-मण्डलम्—समस्त पृथ्वी; इदम्—यह; वैन्यः—वेन के पुत्र ने; प्रायः—प्रायः; चक्रे—कर दिया; समम्—समतल; विभुः—शक्तिमान।

फिर राजधिराज महाराज पृथु ने अपने बाण की शक्ति से पर्वतों को तोड़ कर भूमण्डल के समस्त ऊबड़-खाबड़ स्थानों को समतल कर दिया। उनकी कृपा से भूमण्डल की पूरी सतह प्रायः सपाट हो गई।

तात्पर्य : सामान्यतः पृथ्वी के पर्वतीय भाग वज्रपात से सपाट होते रहते हैं। सामान्यतः यह स्वर्ग के राजा इन्द्र का कार्य है, किन्तु भगवान् के अवतार राजा पृथु ने इसके लिए इन्द्र की प्रतीक्षा नहीं की, वरन् अपने बलशाली बाण के द्वारा पर्वतों को स्वयं खण्ड-खण्ड कर दिया।

अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ।
निवासान्कल्पयां चक्रे तत्र तत्र यथार्हतः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अथ—इस प्रकार; अस्मिन्—इस पृथ्वी पर; भगवान्—श्रीभगवान्; वैन्यः—वेन का पुत्र; प्रजानाम्—प्रजा का; वृत्तिदः—जीविका देनेवाला; पिता—पिता; निवासान्—आवास, वास-स्थान; कल्पयाम्—उपयुक्त; चक्रे—बनाया; तत्र तत्र—जहाँ-तहाँ; यथा—जिस प्रकार; अर्हतः—वांछित, उपयुक्त।

राजा पृथु अपनी सारी प्रजा के लिए पिता तुल्य था। वह उन्हें उचित जीविका देने में प्रत्यक्ष

रूप से व्यस्त था। उसने भूमण्डल की सतह को समतल करके जितने भी निवास-स्थानों की आवश्यकता थी उनके लिए विभिन्न स्थल नियत कर दिये।

ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ।
घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान्खेटखर्वटान् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ग्रामान्—गाँव; पुरः—नगर; पत्तनानि—बस्तियाँ; दुर्गाणि—किले; विविधानि—नाना प्रकार के; च—भी; घोषान्—ग्वालों की बस्तियाँ; व्रजान्—गोशालाएँ; स-शिबिरान्—छावनियाँ; आकरान्—खानें; खेट—खेतिहरों की बस्तियाँ; खर्वटान्—पहाड़ी गाँव।

इस प्रकार राजा ने अनेक प्रकार के गाँवों, बस्तियों, नगरों की स्थापना की और अनेक किले, ग्वालों की बस्तियाँ, पशुशालाएँ, छावनियाँ, खानें, खेतिहर बस्तियाँ तथा पहाड़ी गाँव बनवाये।

प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ।
यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

प्राक्—पूर्व; पृथोः—राजा पृथु के; इह—इस पृथ्वी पर; न—कभी नहीं; एव—निश्चय ही; एषा—यह; पुर—नगरों की; ग्राम-आदि—गाँवों आदि की.; कल्पना—नियोजित व्यवस्था; यथा—जिस प्रकार; सुखम्—सुविधाजनक; वसन्ति स्म—रहते थे; तत्र तत्र—जहाँ तहाँ; अकुतः-भयाः—बिना हिचक के, बेखटके।

राजा पृथु के शासन के पूर्व विभिन्न नगरों, ग्रामों, गोचरों इत्यादि की सुनियोजित व्यवस्था न थी। सब कुछ तितर-बितर था और हर व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार अपना वास-स्थान बनाता था। किन्तु राजा पृथु के काल से नगरों तथा ग्रामों की योजनाएँ बनने लगीं।

तात्पर्य : इस कथन से लगता है कि नगर-योजना नवीन नहीं है, वरन् राजा पृथु के काल से चली आ रही है। हम भारत के अत्यन्त प्राचीन नगरों में सुव्यवस्थित योजना विधियाँ पाते हैं। *श्रीमद्भागवत* में ऐसे प्राचीन नगरों के अनेक वर्णन आये हैं। यहाँ तक कि पाँच हजार वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण की राजधानी द्वारका सुनियोजित नगरी थी तथा इसी प्रकार मथुरा तथा हस्तिनापुर (अब नई दिल्ली) जैसे अनेक सुनियोजित नगर थे। इस प्रकार नगरों की योजना कोई नवीन कल्पना नहीं है, वरन् वह प्राचीन युग में विद्यमान थी।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत *के चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत ''पृथु महाराज द्वारा पृथ्वी का दोहन'' नामक अठारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।*

Chapter उन्नीस

राजा पृथु के एक सौ अश्वमेध यज्ञ

मैत्रेय उवाच
अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ।
ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; अथ—तत्पश्चात्; अदीक्षत—शुरू किया; राजा—राजा ने; तु—तब; हय—घोड़ा, अश्व; मेध—यज्ञ; शतेन—एक सौ सम्पन्न करने के लिए; सः—वह; ब्रह्मावर्ते—ब्रह्मावर्त नाम से विख्यात; मनोः—स्वायंभुव मनु के; क्षेत्रे—भूभाग में; यत्र—जहाँ; प्राची—पूर्व की ओर; सरस्वती—सरस्वती नदी।

महर्षि मैत्रेय ने आगे कहा : हे विदुर, राजा पृथु ने उस स्थान पर जहाँ सरस्वती नदी पूर्वमुखी होकर बहती है, एक सौ अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किए। यह भूखण्ड ब्रह्मावर्त कहलाता है, जो स्वायंभुव मनु द्वारा शासित था।

तदभिप्रेत्य भगवान्कर्मातिशयमात्मनः ।
शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तत् अभिप्रेत्य—यह विचार कर; भगवान्—परमशक्तिशाली; कर्म-अतिशयम्—सकाम कर्मों में बाजी मारनेवाला; आत्मनः—स्व; शत-क्रतुः—इन्द्र, जिसने एक सौ यज्ञ किये थे; न—नहीं; ममृषे—सहन कर सका; पृथोः—राजा पृथु का; यज्ञ—यज्ञ का; महा-उत्सवम्—महोत्सव।

जब स्वर्ग के राजा सर्वाधिक शक्तिशाली इन्द्र ने यह देखा तो उसने विचार किया कि सकाम कर्मों में राजा पृथु उससे बाजी मारने जा रहा है। अतः वह राजा पृथु द्वारा किये जा रहे यज्ञ-महोत्सव को सहन न कर सका।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में जो भी सुखोपभोग करने या भौतिक प्रकृति पर शासन करने के लिए आता है, वह दूसरों से ईर्ष्या करता है। यह ईर्ष्या स्वर्ग के राजा इन्द्र में भी पाई जाती है। जैसाकि शास्त्रों से प्रकट है, इन्द्र अनेक बार अनेक पुरुषों के प्रति ईर्ष्यालु रहा था। वह विशेष रूप से महान् सकाम कर्मों तथा योग अभ्यास अथवा सिद्धियों के प्रति ईर्ष्या रखता था। सहन न कर सकने के कारण वह उन्हें छिन्न-भिन्न करना चाहता था। उसे यह भय बना रहता था कि कहीं कोई योगशक्ति के लिए अधिक बड़े यज्ञ सम्पन्न करके उसका पद न हथिया ले। चूँकि इस भौतिक संसार में कोई भी पराई